विनाशी–अविनाशी

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,
पूर्व कुलपति, सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

जगत् दो तत्वों से मिलकर बना है–जड़ और चेतन। जड़ विनाशी है और चेतन अविनाशी। इस सृष्टि में जितने भी जड़ पदार्थ हैं उनका एक न एक दिन विनाश अवश्य होगा। चेतन तत्व शाश्वत है यह कभी नष्ट नहीं होता। जड़ तत्व को पुद्गल कहते हैं। इसमें वर्ण, रूप, रस, गन्ध होता है। पुद्गल गलन मिलन धर्मा है। इसमें परिवर्तन होता रहता है। पर्याय बदलते रहते हैं। शुद्ध तत्व कभी नहीं बदलता। भगवान महावीर ने जड़ तत्व को पुद्गल कहा है और आत्मा को चेतन कहा है। आत्मा को देखा नहीं जा सकता इसे केवल अनुभव किया जा सकता है। अतीन्द्रिय ज्ञान के द्वारा आत्मा का प्रत्यक्ष होता है।

मनुष्य इस लोक में सकाम कर्मों के द्वारा जिस शरीर के लिये भोग प्राप्त करना चाहता है, वह शरीर ही पराया–स्यार–कुत्तों का भोजन और नाशवान है। कभी वह मिल जाता है तो कभी बिछुड़ जाता है। जब शरीर की यह दशा है– तब इससे अलग रहने वाले पुत्र, स्त्री, महल, धन, सम्पत्ति, राज्य खजाने, हाथी, घोड़े, मन्त्री, नौकर–चाकर, गुरुजन और दूसरे अपने कहलाने वालों की तो बात ही क्या है। ये तुच्छ विषय शरीर के साथ ही नष्ट हो जाते हैं। ये जान तो पड़ते हैं पुरुषार्थ के समान, परन्तु हैं वास्तव में अनर्थरूप हैं। इनका वास्तविक अस्तित्व नहीं है। ये सब विनाशी हैं।

आत्मा स्वयं ही अनन्त आनन्द का महान समुद्र है। उसके लिये इन वस्तुओं की क्या आवश्यकता है? तनिक विचार तो करो– जो जीव गर्भाधान से लेकर मृत्युपर्यन्त सभी अवस्थाओं में अपने कर्मों के अधीन होकर क्लेश–ही क्लेश भोगता है, उसका इस संसार में स्वार्थ ही क्या है। यह जीव सूक्ष्म शरीर को ही अपना आत्मा मानकर उसके द्वारा अनेकों प्रकार के कर्म करता है और कर्मों के कारण ही फिर शरीर ग्रहण करता है।

इस प्रकार कर्म से शरीर और शरीर से कर्म की परम्परा चल पड़ती है, ऐसा होता है अविवेक के कारण। इसलिये निष्काम भाव से निष्क्रिय आत्मस्वरूप भगवान श्रीहरि का भजन करना चाहिये। अर्थ, धर्म और काम सब उन्हीं के आश्रित हैं, बिना उनकी इच्छा के नहीं मिल सकते। भगवान श्रीहरि समस्त प्राणियों के ईश्वर, आत्मा और परम प्रियतम हैं। वे अपने ही बनाये हुए पंचभूत और सूक्ष्मभूत आदि के द्वारा निर्मित शरीरों में जीव के नाम से कहे जाते हैं। देवता, दैत्य, मनुष्य, यक्ष अथवा गन्धर्व–कोई भी क्यों न हो जो भगवान के चरण कमलों का सेवन करता है, वह हमारे ही समान कल्याण का भाजन होता है।

भगवान को प्रसन्न करने के लिये ब्राह्मण, देवता या ऋषि होना, सदाचार और विविध ज्ञानों से सम्पन्न होना तथा दान, तप, यज्ञ, शारीरिक और मानसिक शौच और बड़े–बड़े व्रतों का अनुष्ठान पर्याप्त नहीं है। भगवान केवल निष्काम प्रेम भक्ति से ही प्रसन्न होते हैं और सब तो विडम्बना मात्र है।

इसलिये समस्त प्राणियों को अपने समान ही समझकर सर्वत्र विराजमान, सर्वात्मा, सर्वशक्तिमान भगवान की भक्ति करनी चाहिए। भगवान की भक्ति के प्रभाव से दैत्य, यक्ष, राक्षस, स्त्रियां, शुद्र, गोपालक अहीर, पक्षी, मृग और बहुत से पापी जीव भी भगवद्भव को प्राप्त हो गये हैं। इस संसार में या मनुष्य शरीर में जीव का सबसे बड़ा स्वार्थ अर्थात एकमात्र परमार्थ इतना ही है कि वह भगवान की अनन्य भक्ति प्राप्त करें। उस भक्ति का स्वरूप है सर्वदा, सर्वत्र सब वस्तुओं में भगवान का दर्शन।

जैसे ईश्वरमूर्ति काल की प्रेरणा से वृक्षों के फल लगते, ठहरते, बढ़ते, पकते, क्षीण होते और नष्ट हो जाते हैं– वैसे ही जन्म, अस्तित्व की अनुभूति, वृद्धि, परिणाम, क्षय और विनाश–ये छः भाव–विकार शरीर में ही देखे जाते हैं, आत्मा से इनका कोई सम्बन्ध नहीं है। आत्मा नित्य, अविनाशी, शुद्ध, एक, क्षेत्रज्ञ, आश्रय, निर्विकार, स्वयं–प्रकाश, सबका कारण, व्यापक, असंग तथा आवरणरहित है। ये आत्मा के उत्कृष्ट लक्षण हैं। इनके द्वारा आत्मतत्त्व को जानने वाले पुरुष को चाहिये कि शरीर आदि में अज्ञान के कारण जो मैं और मेरे का झूठा भाव हो रहा है, उसे छोड़ दे। जिस प्रकार सुवर्ण की खानों में पत्थर में मिले हुए सुवर्ण को उसके निकालने

की विधि जानने वाला स्वर्णकार उन विधियों से उसे प्राप्त कर लेता है, वैसे ही अध्यात्मतत्त्व को जानने वाला पुरुष आत्म प्राप्ति के उपायों द्वारा अपने शरीर रूप क्षेत्र में ही ब्रह्मपद का साक्षात्कार कर लेता है।

मूल प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार और पंचतन्मात्राएं– इन आठ तत्त्वों को प्रकृति कहा गया है। उनके तीन गुण हैं– सत्त्व, रज और तम तथा उनके विकार हैं सोलह–दस इन्द्रियां, एक मन और पंचमहाभूत। इन सबमें एक पुरुषतत्त्व अनुगत है। इन सबका समुदाय ही देह है। यह दो प्रकार का है–स्थावर और जंगम। इसी में अन्तःकरण, इन्द्रिय आदि अनात्म वस्तुओं का यह आत्मा नहीं है, इस प्रकार बाध करते हुए आत्मा को ढूंढना चाहिये। आत्मा सबमें अनुगत है, परन्तु है वह सबसे पृथक्। इस प्रकार शुद्ध बुद्धि से धीरे–धीरे संसार की उत्पत्ति, स्थिति और उसके प्रलय पर विचार करना चाहिए।